RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-11
November -2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

डॉ० तुलसीराम के प्रेरक–स्रोत

ज्वाला चन्द्र चौधरी

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 10 November 2018

ABSTRACT

डॉ० तुलसीराम पर अनेक चिंतकों, विचारकों तथा दार्शनिकों का व्यापक प्रभाव पड़ा हुआ है। उनके प्रेरक स्रोत के रूप में मार्क्स, अंबेडकर, गाँधी, पेरियार आदि को रखा जा सकता है। मार्क्स और अंबेदकर से उन्हें शक्ति मिलती है तथा गाँधी और पेरियार से उनके चिंतन में समन्वय की चेतना आती है। डॉ० तुलसीराम इसी वजह से अन्य दलित कारों से अलग रूप में दिखते हैं। जहाँ अन्य दलित–लेखक सवर्णों के प्रति कट्टरता का भाव रखते हैं, वहीं अंबेडकरजी उनके प्रति सहानुभूति रखते हैं। अतएव कहा जा सकता है कि तुलसीराम की वैचारिकता में देश और दुनिया के तमाम चिंतकों का योगदान है।

प्रस्तावना :

डॉ० अम्बेडकर को तुलसीराम आधुनिक भारत का निर्माता बताते हैं। वे कहते हैं कि राष्ट्र–निर्माण की परियोजना में डॉ० अम्बेदकर ने जाति और वर्ण–व्यवस्था के खिलाफ लड़ते हुए, संविधान के माध्यम से इस जातिवादी–वर्णवादी राष्ट्र को मानवतावादी राष्ट्र बनाया और ''संविधान का दार्शनिक आधार डॉ० अम्बेडकर के सौजन्य से बौद्ध दर्शन हो सका। उन्होंने संविधान में जो सिद्धान्त पिरोया है, उस पर बौद्ध–दर्शन की छाप स्पष्ट रूप से है। यद्यपि उस समय वे ऑफिशियली बौद्ध नहीं बने थे। भारत के तिरंगे झंडे पर जो चक्र है, वस्तुतः वह धम्म–चक्र है। भारत का जो प्रतीक चिह्न है, उसके शेर भी बौद्ध परंपरा से आते हैं और सबसे बड़ा 'पंचशील का सिद्धान्त' जो बौद्ध धर्म की आत्मा है, यह संविधान का भी प्राण तत्त्व है। भारतीय संविधान में निहित स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व कहीं और से नहीं, बल्कि बौद्ध–दर्शन से लिया गया है।''(1)

दलित विमर्शक डॉ० अम्बेडकर महात्मा बुद्ध के दर्शन से पूर्णतः प्रभावित प्रतीत होते हैं। बुद्ध की समरस भावना ही सामाजिक विषमता को दूर कर सकती है। आगे वे बताते हैं कि ''डॉ० अम्बेडकर के चिंतन की जमीन बौद्ध–दर्शन के मूल से बनी है। डॉ० अम्बेडकर ने भारत के बहुजन समाज के दुःखें की जड़ जाति और वर्ण–व्यवस्था को काटने के लिए गौतम–बुद्ध का सहारा लिया। बौद्ध–दर्शन के मूल नारे– 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' तथा 'संघम् शरणं गच्छामि' को डॉ० अम्बेडकर ने 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो' के रूप में बदल दिया। इन सब बातों को लेकर वे स्वयं तथागत हुए। तथागत अर्थात् जो स्वयं के बताए हुए रास्ते पर चले। उन्होंने अपने दिए हुए पहले नारे 'शिक्षित बनो' के अनुसार चलते हुए अपने युग में और दलितों के सदियों पुराने इतिहास में सबसे ज्यादा शिक्षा प्राप्त की। दूसरा नारा था– 'संगठित रहो'। उन्होंने अपनी विचारधारा के पीछे जाति–व्यवस्था से पीड़ित संपूर्ण समाज को लाम–बंद करके खड़ा कर दिया। उनका अंतिम नारा था– 'संघर्ष करो'। उन्होंने संपूर्ण भारत की मुक्ति के लिए जाति और वर्ण–व्यवस्था से जीवनपर्यन्त टक्कर ली।(2)

आर्यों द्वारा फैलाए गए कथित 'नस्लीय श्रेष्ठता' के मिथक का महामानव गौतम बुद्ध ने तर्कसंगत ढंग से खंडित किया। वे किसी भी मानव समुदाय के नस्लीय और जन्म आधारित श्रेष्ठता को सिरे से खारिज करने वाला शास्त्रार्थ संवाद 'मज्झिम निकाय' में विद्यमान है, जिसमें अस्लायन इस नस्लीय श्रेष्ठता पर बुद्ध से तार्किक शास्त्रार्थ करते हुए कहता है कि 'हम श्रेष्ठ नस्ल और शुद्ध लोग हैं।' इस पर गौतम बुद्ध रक्त और नस्ल की कथित वर्णाश्रमी श्रेष्ठता और शुद्धता को खारिज करते हुए कहते हैं, ''न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो। कम्मना वसलो होती, कम्मना होती ब्राह्मणो।'' अर्थात् 'जन्म से न कोई शूद्र होता है, न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। कर्म से ही शूद्र होता है, कर्म से ही ब्राह्मण होता है। 'एक बात महत्त्वपूर्ण है कि यहाँ बुद्ध ने वर्णाश्रमी वर्चस्ववादी कर्म–सिद्धान्त द्वारा श्रम और मानवीय गरिमा के पतन किए जाने को सिरे से खारिज किया है। वे 'मानव श्रम समानता' और मनुष्य की गरिमा की बराबरी के सन्दर्भ में यह बात कहते हैं, जिसमें श्रम–संस्कृति की महत्ता को सर्वोपरि माना गया है।

आगे बुद्ध शाक्य अस्लायन को उनके कुल–गोत्र के जन्म लेने की कहानी को बताते हैं। ''जहाँ से तुम्हारी शुद्धता शुरू होती है, वे है शाल के घने वृक्षों का शाक्य वन। उस देश–काल में एक राजा ने कई भाई–बहनों के चारित्रिक पतन की सूचना के आधार पर उन्हें अपने राज्य से बाहर कर दिया। बाहर किये गए लोग शाक्य वन में जाकर रहने लगे। जहाँ ये लोग संयोग करते रहे। उन्हीं भाई–बहनों की आपसी संयोग से जन्म लेने वाले लोग शाक्य कहलाए। यही तुम्हारी शुद्धता और पवित्रता है। इसी तरह सम्पूर्ण मानव का सृजन हुआ है।''(3) इस प्रकार बुद्ध कथित श्रेष्ठता और शुद्धता को तर्कसंगत ढंग

RRIJM 2015, All Rights Reserved

से खारिज करते हैं। इसी कारण उन्हें बुद्ध कहा गया हैं बुद्ध अर्थात् जो जीवन में बुद्धि–संगत व्यवहार करते हों।

मार्क्सवाद का अध्ययन करते हुए प्रोफेसर तुलसीराम भारतीय समाजवादियों के सवर्णवादी मन को टटोलते हैं और इस दर्शन में गहरी आस्था के बावजूद इस वर्ग के अंतर्विरोधों को उजागर करते हैं। वे इस चिंतन स्थिति पर पहुँचते हैं कि मार्क्स का दर्शन शक्ति–बल और हिंसा पर आधारित है। अर्थात् जब तक शक्ति है तब तक सत्ता है। जैसे ही शक्ति समाप्त होती है सत्ता समाप्त हो जाती है। वहीं बौद्ध–दर्शन के मूल में मानसिक परिवर्त्तन और अहिंसा की आधारभूत संकल्पना विद्यमान है। यह दर्शन इसी अहिंसक ढंग से समाज परिवर्तन की बात करता है क्योंकि, मानसिक परिवर्तन द्वारा सत्ता स्थाई होती है। बुद्ध इस बात को गहराई से समझ गए थे कि आर्यों ने मानसिक गुलामी के माध्यम से अपनी शाश्वत सत्ता हजारों–हजार साल में लगातार बना रखी है। इसलिए बुद्ध इस मानसिक गुलामी को तोड़ने के लिए मानसिक परिवर्तन की बात करते हैं। इस बात को तुलसीराम सिद्दत से समझते हुए बुद्ध को अपना हीरो मान बैठते हैं। वे कहते हैं कि अगर 'मार्क्स ने बुद्ध को पढ़ लिया होता तो उसके दर्शन का स्वरूप शायद कुछ और ही होता।'[4]

गौतम बुद्ध मानसिक परिवर्तन की बात क्यों करते थे? यह विशेष ध्यान देने की बात है। आर्यों ने यहाँ आदिवासियों को मानसिक और शारीरिक गुलाम बनाने के बाद उसे स्थाई बनाने के लिए मिथको, कर्मकांडों, अंधविश्वासों आदि को यहाँ के लोगों के अंतर्मन में बिठा दिया। एक सच देखिये कि जब यूरेशियन आर्यों ने आदिवासियों की सिन्धु–भूमि पर आक्रमण किया तो उन्हें यहाँ के मूलनिवासियों, आदिवासियों ने हरा दिया। कई बार यह क्रम चलता रहा। आदिवासी जनसंख्या में इस स्थिति को देखते हुए आर्यों ने आदिवासियों के बीच यह मिथक फैलाया (तुलसीराम के शब्दों में) कि ''हम सब बहुत कम हैं, लेकिन देव पर्वत से आनेवाले हमारे देवी–देवता 33 करोड़ हैं, जो हथियारों से लैस हैं। वे आएँगें और तुम सब का संहार करेंगे। इस मिथक से यहाँ के आदिवासियों के मन में डर घर कर गया और उन्होंने आर्यों की हर तरीके की गुलामी स्वीकार ली। आगे चलकर इस मिथक रूपी हथियार का प्रयोग पंडा–पुरोहित आज भी कर रहे हैं। आप सोचिए कि ये मिथक कितने खतरनाक और कोरे झूठ हैं कि आज से पाँच हजार साल पहले सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या भी 33 करोड़ नहीं रही होगी, लेकिन आर्यों ने कहा कि 'हमारे देवी देवता तैतीस करोड़ हैं।' बुद्ध ने इसी मानसिक परिवर्तन की बात की।[5]

डॉ० अम्बेडकर और गाँधी के बीच असहमति के अनेक मुद्दों में सबसे बड़ा मुद्दा अस्पृश्यता, जाति और वर्ण–व्यवस्था का था। महात्मा गाँधी का मानना था कि अस्पृश्यता और जाति मनुष्य कृत है, जबकि वर्ण व्यवस्था ईश्वर कृत। वहीं डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि 'अस्पृश्यता जाति और वर्ण–व्यवस्था मनुष्य कृत है। ईश्वर कृत कुछ भी नहीं है।' संविधान सभा में डॉ० अम्बेडकर संघर्ष करते हुए जनतांत्रिक, मानवतावादी और धर्मनिरपेक्ष भारतीय संविधान में अस्पृश्यता और जाति को तो अवैध घोषित करवा दिए, लेकिन वर्ण–व्यवस्था जस की तस आज भी वैध बनी हुई है।[6] डॉ० अम्बेदकर चाहते थे कि वर्ण व्यवस्था को भी संविधान सभा में अवैध घोषित किया जाय, लेकिन वर्चस्ववादियों ने यह संभव नहीं होने दिया। इसी कारण इस देश के मूल मानव समुदाय के प्रतीक 'बाबा साहब डॉ० अम्बेदकर की मूर्तियों' का सवर्णों द्वारा लगातार संहार जारी है।

डॉ० अम्बेडकर द्वारा अस्पृश्यता और जाति को भारतीय संविधान में अवैध घोषित किए जाने के बाद भी दलितों के साथ अस्पृश्यता, जातीय आधार पर भेद–भाव और उनका लगातार संहार जारी है। प्रोफेसर तुलसीराम अपने संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'भारत अश्वघोष' में 'दलितनामा' नामक कॉलम में दलितों के साथ होने वाली ऐसी घटनाओं को लगातार लिखते हैं ''गाँधी जी की जन्मभूमि गुजरात छुआछूत तथा जाति–व्यवस्था को बनाए रखने के लिए हमेशा कुख्यात रही है– अहमदाबाद से करीब 110 कि.मी. दूरी पर स्थित अनियारी गाँव के 59 दलित परिवारों के सैकड़ों लोगों को जो भुगतना रड़ा है वह बेमिसाल है। 13 जून को इंडियन एक्सप्रेस को भिकाभाई परमार ने बताया कि उस गाँव में दलितों को न अच्छा कपड़ा पहनने दिया जाता है न खुले सिर घुमने दिया जाता है। कॉलेज जाने वाले छात्रों को धूपी चश्में नहीं पहने दिया जाता है न खुले सिर घुमने दिया जाता है। यदि दलित ऐसा करते हैं तो सवर्ण घेर कर उनकी पिटाई करते हैं।''[7]

इसी तरह महाराष्ट्र की दलित महिला 'रमा ताई पारिल की नग्न फेरी' हो या आन्ध्रप्रदेश के दलितों के कुँए को सवर्ण मूत्रालय में बदल देना रहा हो या हरियाणा में वर्ण–व्यवस्था से उत्पीड़ित दलितों का ईसाई बन जाना रहा हो या फिर राजस्थान में 1994–96 के बीच दलितों पर होने वाली घटनाओं में 1660 दलितों की हत्याएँ हों या 2418 दलित महिलाओं के साथ बलात्कार की घटनाएँ रही हो– सबकी–सब–घटनाओं को वहाँ की सरकार ने माफ कर दिया। इस तरह दलित संहार आज भी जारी है। इसे आज हम दादरी में की गई दो मासूम दलित बच्चों की हत्या के रूप में देख सकते हैं।

प्रोफेसर तुलसीराम का अन्तर्राष्ट्रीय चिंतन एशिया, अफ्रिका होते हुए अमेरिका तक जाता है। अमेरिका में मूल निवासियों की गोरे अमेरिकियों द्वारा संहार को वे भारत में युरेशियन अर्थों द्वारा मूल निवासियों का मास लेवल पर किए जाने संहार की तरह ही देखते हैं। गौतम बुद्ध के इस वर्णाश्रमों की भूमि पर पहली क्रान्ति पर वे अत्यन्त हर्षित होते हैं। इसी तरह बुद्ध की क्रान्ति को आर्यों, ब्राह्मणों द्वारा प्रतिक्रान्ति कर बौद्ध–दर्शन को भारत–भूमि में सर्वनाश किए जाने और अमेरिका के ब्लैक राष्ट्रपति बराक ओबामा का

दुनिया में मात्र हाथियों के व्यापार और पूँजीवाद को बढ़ावा देनेवाला राष्ट्रपति बने रहना देखकर वे बहुत दुःखी होते हैं। साथ ही अमेरिका की खुफिया एजेन्सी सी.आई.ए. के एशिया में लोकतंत्र के खिलाफ खौफनाक चेहरे को बेनकाब भी करते हैं। वहीं वे अश्वेत अफ्रिकियों पर गोरों द्वारा ढाए जाने वाले जुल्म पर गहरी चिंता भी प्रकट करते हैं और अंगोला में आजादी के सूरज को सलाम भी करते हैं। अपनी डायरी में सोवियत रूस में समाजवाद के उदय और अस्त को सिद्दत से रखते हैं।

पश्चिम में अश्वेत समुदाय और भारत में दलित–लेखन की एक बड़ी खासियत रही है। इतिहास में दलित, पिछड़े के साथ ब्राह्मण और ब्राह्मण पंथ ने तो अमानुषिक अत्याचार किए। एक गहरा प्रतिवाद उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ज्योतिबा फुले के साथ शुरू हुआ था। पिछले चन्द दशकों में हिन्दी में दलित समाज में अच्छे रचनात्मक स्तर पर प्रतिवाद किया गया। इस दिशा में बड़े पैमाने पर कविता, कहानी और उपन्यास के अलावा सबसे ज्यादा प्रामाणिकता के साथ दलित लेखकों ने आत्मकथा को अपना कारगर हथियार बनाया।

सवर्ण लेखक जब दलित लेखक पर नजर डालते हैं तो सबसे ज्यादा उदार वे इसी बात पर होते हैं कि दलित लेखक आत्मकथा लिखते हैं। वे कहना चाहते हैं कि इन आत्मकथाओं से दलित रचनाकार सहानुभूति पाना चाहता है। उस वक्त वे भूल जाते हैं कि हिन्दी के ढेरों लेखकों ने आत्मकथाएँ लिखी हैं या लिखाई हैं, जिनमें अक्सर 'गर्वीली गरीबी' बेची गई है। और पिछले सात–आठ वर्षों में तो इन आत्म–कथाओं की बाढ़ आ गई है।

महज दस–पन्द्रह बरसों के लेखन में सवर्ण लेखक इस कदर आत्म–मुग्ध रहा है कि उसने तत्काल आत्मकथा लिख डाली है। फिर भी दलित आत्मकथाओं को लेकर हिन्दी आलोचक टिप्पणी करता है। निःसंदेह हिन्दी में ओम प्रकाश वाल्मीकि, सूरज पाल सिंह चौहान, मोहनदास नैमिषराय आदि अनेक महत्वपूर्ण दलित रचनाकारों ने संवेदनशील आत्मकथाएँ लिखीं। इस सवाल को इस पृष्ठभूमि में देखना चाहिए कि अमेरिका में अश्वेत बुद्धिजीवियों में से भी अधिकांश ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेखन आत्मकथाओं के रूप में ही किया। फ्रेडरिक डगलस जैसे कुछ लेखकों ने तो एक से अधिक आत्मकथाएँ लिखीं।

प्रोफेसर तुलसी राम पर लिखते हुए आत्मकथाओं के इस प्रसंग का एक खास मकसद है। यह धारावाहिक छपी लेकिन उक्त प्रसंगों में तुलसीराम की इस आत्मकथा की अंतर्वस्तु की पड़ताल भी यहाँ उद्देश्य नहीं है कि यह आत्म–कथा किसी भी अर्थ में मुकदमें का इस्तगासा नहीं है और यही बात इस लेखन को बाकी दलित आत्मकथाओं से अलग करती है। सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली अश्वेत बुद्धिजीवियों में से एक दुब्बायन ने 'सोल्स ऑफ एक ब्लैक' की शुरूआत एक दुखद वक्तव्य से की थी– ''यहाँ दफन पड़े हैं, वे तत्त्व जिन्हें धीरज से पढ़कर पता लगेगा कि एक काले आदमी की रूह क्या होती है।''[8]

ध्यान से देखने पर प्रोफेसर तुलसीराम की उक्त आत्मकथा नहीं उसी दफन हुए कुछ का उत्खनन है। हजारों बरस जिस सभ्यता पर पत्थर, मिट्टी और धूल का टीला बन चुका था, उस दफन हो चुकी संस्कृति का एक तरह से पुरातात्त्विक उत्खनन है यह लेखन और इस नजरिये से एक गुम हो चुके इतिहास का संग्रहालय देखा जा सकता है। इनके लेखन की तुलना लियोनार्ड वुली जैसे लोगों के काम से की जानी चाहिए या उस रोजेटा स्टोन से, जिसे देखकर मिस्र की समूची सभ्यता पढ़ी जा सकी थी। यह महज संयोग है कि प्रोफेसर तुलसीराम स्वयं दलित हैं, लेकिन अपने लेखन में वे प्रोफेसर वूली है। इतिहासविद् 'क्रयबर' की किताब है 'कन्फीगुरेशन आफ कल्चरल ग्रोथ'। तुलसीराम का यह आत्मकथात्मक लेखन भारत के समाज के सांस्कृतिक उलझावों का लगभग वैसा ही प्रामाणिक दस्तावेज है।

महात्मा फुले और अम्बेडकर के बाद वे अकेले ऐसे व्यक्तित्त्व है जो अपने आपको एक रोजेटा स्टोन में तब्दील करके इस भू–भाग का यह इतिहास पढ़ने में मदद करते हैं। यह लेखन सिर्फ एक व्यक्ति की कहानी मात्र नहीं है, जिसमें इस बात के ब्यौरे हों कि उसे क्या–क्या तकलीफें उठानी पड़ी, बल्कि इस बात को लेकर तो लेखक खासा ही हँसोड़ है। दरअसल इसकी हर घटना, हर स्थिति, हर रिश्ता, हर मनोभाव एक कूटभाषा की तरह पढ़ा जा सकता है। यह इतिहास और समाजशास्त्र के बीच मनुष्य की चेतना के गढ़े जाने की प्रक्रिया का खुलासा करता है और इस तरह यह आत्मकथा से ज्यादा एक संग्रहालय की दीर्घा है। एक छोटा–सा उदाहरण ही काफी होगा एक रोचक पहलू यह था कि मरे पशुओं के माँसपिण्ड पर झाड़ियों से भगाते हुए गिद्धों के बीच खड़ा होने में उन्हें एक अनोखी कला–कृति का अभिन्न अंग होने जैसी अनुभूति होती थी। इस छोटे से अंश में खौफनाक और घृणास्पद स्थिति के बीच आदमी की काया में एक ऐसा क्रिटीक है जो इस बात की तस्दीक करता है कि इस सबके बावजूद मनुष्य कैसे बचा रह जाता है। बीसबीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर पिछले दिनों हिन्दी में बड़ी तायदाद में सामने आई आत्मकथाओं के बीच डॉ० तुलसीराम की आत्मकथा महत्त्वपूर्ण मानी जानी चाहिए।

यहाँ एक और बात भी महत्वूर्ण है कि आम तौर पर माना जाता है कि प्रतिभा जन्मजात होती है और यह बात संकेत करती है कि बड़ा विद्वान्, महान नायक या साहित्यकार–कलाकार चूँकि जन्म से महानता का गुण पाता है, इसलिए महान् होता है। इसका यह भी अर्थ होता है कि हर किसी के वश का नहीं होता कि वह महान् बन जाए। यह बड़ा दुष्ट सिद्धान्त है। इसके पीछे चन्द सुखनसीनों का तर्क छुपा होता है– राजपुरुष, राजा के घर जन्म से होता है, लेकिन हर किसी में संभावना होती है। फर्क इतना होता है कि

कुछ प्रतिभा के बीच हर कठिनाई के बावजूद उग जाते हैं और बाकी शुरू में ही मर जाते हैं। प्रोफेसर तुलसीराम की आत्मकथा इसी सच का सूक्ष्मता से तैयार किया गया दस्तावेज है।

प्रोफेसर तुलसीराम एक वामपंथी विचारक हैं। हिन्दी के दलित–लेखन में कई बुद्धिजीवी ऐसे हैं, जो मार्क्सवाद से प्रभावित हैं, जैसे कँवल भारती, रमाणिका गुप्ता, लेकिन तुलसीराम न तो वामपंथ को धागे की तरह धारण करते हैं और न उसके सामने श्रद्धावनत होते हैं। वे मार्क्सवाद को अपने तार्किक नजरिए से स्वीकार करते हैं। कहा जा सकता है कि वे बहुत हद मार्क्सवादी आन्दोलन को फ्रांसीसी वामपंथी बुद्धिजीवी आल्थूसे की नजर से देखते हैं। वे उन्नीसवीं सदी में विकसित इस विचारधारा को आज के समाज शास्त्र और इतिहास के बीच रखकर देखते हैं।

उन्होंने कम्युनिस्ट देशों की अपनी यात्राओं में कम्युनिस्ट तंत्र की खामियों पर बारीकी से टिप्पणियाँ की। वामपंथी आन्दोलन के पाँच सदी से ज्यादा के अरसे में यह संगठन लगातार टुकड़े–टुकड़े होता चला गया है और यह भी कड़वा सच है कि आवाम से उसका रिश्ता कटता चला गया है। आल्थूसे ने फ्रांस के कम्युनिस्ट आन्दोलन की व्याख्या करते हुए जमीनी कमजोड़ियों को रेखांकित किया हैं। प्रोफेसर तुलसीराम ने आल्पुसे से आगे बढ़कर भारत की राजनीतिक अस्थिरता को प्रमुख हथियार बना लेने की तीखी आलोचना की हैं। उनकी यह आलोचना सचमुच महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। जमीन पर जन मानस के बीच काम करना या जमीन पर जनआन्दोलनों पर भरोसा करने के बजाय भारत की कम्युनिस्ट पार्टियाँ राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने पर ज्यादा भरोसा करने लगी है। भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन की विडम्बना रही है कि अपने विश्वासों में वे भी एक तरह के तोगड़िया या सिंहल होते हैं और उन्हें सबसे ज्यादा चिढ़ तर्क से होती है। तर्क करने वाला विश्व हिन्दू परिषद् के लिए भी दुश्मन होता है और दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए भी।

प्रोफेसर तुलसीराम की इस स्थापना पर भी गम्भीरता से विचार होना चाहिए कि इस देश में क्षेत्रीय पार्टियों के इतने बड़े पैमाने पर उत्पन्न हो जाने के पीछे कम्युनिस्ट आन्दोलन का कितना योगदान है। वर्तमान समय में भारतीय चिन्तन में डॉ० तुलसीराम पर संक्षेप में लिखा जाना उनके साथ अन्याय है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ० तुलसीराम की विचारधारा का प्राणतत्त्व अंबेडकर और मार्क्स से निर्मित है। गौणतः उनपर कबीर, गाँधी तथा पेरियार का प्रभाव है। अंबेडकर में किसी भी तरह की कट्टरता नहीं है। वे सबको मिलाकर अपने समन्वयवादी विचार का निर्माण करते हैं। अतएव अपने समकालीन ही नहीं अपितु पूरी दलित रचनात्मकता में तुलसीराम के विशिष्ट महत्त्व हैं।

संदर्भ सूची :

1. 'बहुजन वैचारिकी'– प्रवेशांक, विशेषांक, तुलसी राम, जनवरी, 2016, पृ०– 06
2. वही, पृ०– 6–7
3.. 'बहुजन वैचारिकी', प्रवेशांक, विशेषांक, तुलसीराम, जनवरी, 2016, पृ०– 7
4. वही, पृ०– 7
5. वही, पृ०– 7
6. वही, पृ०– 8
7. वही, पृ०– 8
8. 'तुलसी राम : व्यक्तित्व और कृतित्व', पृ०– 47

RRIJM 2015, All Rights Reserved